

राजस्थान उच्च न्यायालय की जयपुर पीठ के लिए

एस.बी. सिविल रिट याचिका संख्या 3753/2006

जी.के. पुत्र एन.के.

----याचिकाकर्ता

बनाम

1. राजस्थान राज्य, मुख्य सचिव, शासन सचिवालय, जयपुर के माध्यम से।
2. उप सचिव (न्यायालय), मुख्यमंत्री राहत कोष, राजस्थान सरकार, शासन सचिवालय, जयपुर।
3. जिला कलेक्टर, जिला, जयपुर।
4. राजेंद्र उर्फ नेन्हे पुत्र मोतीलाल, वर्तमान में केंद्रीय कारागार, जयपुर में।

----प्रतिवादी

याचिकाकर्ता (ओं) के लिए : सुश्री नैना सराफ, अधिवक्ता।
प्रतिवादी (ओं) के लिए : कोई भी उपस्थित नहीं।

माननीय न्यायमूर्ति अनूप कुमार ढांड

आरक्षित तिथि : 11/12/2023

घोषित तिथि : 03/01/2024

आदेश

प्रकाशनीय

न्यायालय द्वारा

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता, यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते
सर्वास्तत्रफलाः क्रियाः" मनुस्मृति का एक प्रसिद्ध श्लोक है जिसका अर्थ है
"जहाँ महिलाओं का सम्मान किया जाता है, वहाँ देवत्व खिलता है और

जहाँ महिलाओं का अपमान होता है, वहाँ सभी कार्य चाहे कितने भी अच्छे क्यों न हों, निष्फल रहते हैं”।

1. बलात्कार के अपराध को नारीत्व पर सबसे बड़ी यातना माना जा सकता है। यह न केवल महिला के शरीर को शारीरिक यातना पहुँचाता है, बल्कि उसकी मानसिक, मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक संवेदनशीलता पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालता है। इसलिए, बलात्कार को मूल मानव अधिकार और महिला के सबसे महत्वपूर्ण मौलिक अधिकार, अर्थात् 'जीवन के अधिकार' के विरुद्ध सबसे जघन्य अपराध माना जाता है। यह यौन अपराध से कम, महिलाओं को अपमानित और अपमानित करने के उद्देश्य से किया गया एक आक्रामक कृत्य अधिक है। ऐसे मामलों को न्यायालयों द्वारा अत्यंत संवेदनशीलता और उच्च जिम्मेदारी के साथ निपटाया जाना आवश्यक है।

2. दिनांक 19.07.2004 को याचिकाकर्ता की दो वर्षीय नाबालिग पुत्री के साथ एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना घटी, जब प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा बलात्कार किया गया और आरोपी के खिलाफ भारतीय दंड संहिता (संक्षेप में 'आईपीसी') की धारा 365 और 376 के तहत अपराधों के लिए पुलिस स्टेशन सोडाला, जयपुर में एफआईआर संख्या 213/2004 दर्ज की गई और जांच के बाद, उसे अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश (फास्ट ट्रैक) संख्या 1, जयपुर शहर की अदालत द्वारा आरोप पत्र दायर किया गया और मुकदमा चलाया गया, जिसने उसे दोषी पाया और धारा 365 और 376 आईपीसी के तहत अपराधों के लिए उसे दोषी ठहराया और उसे प्रत्येक अपराध के लिए 500/- रुपये के जुर्माने के साथ दस साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई, लेकिन उसे कोई मुआवजा नहीं दिया गया।

3. उपर्युक्त निर्णय पारित होने के बाद, याचिकाकर्ता ने अपनी नाबालिग बलात्कार पीड़िता बेटी को 3,00,000/- रुपये का मुआवजा देने के लिए जिला कलेक्टर, जयपुर के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया, लेकिन कानून में ऐसा कोई प्रावधान न होने के कारण उक्त आवेदन अनिर्णीत रहा।

4. बलात्कार पीड़ितों को मुआवजा देने की आवश्यकता को बांग्लादेश के सर्वोच्च न्यायालय ने अल अमीन बनाम राज्य के मामले में मान्यता दी थी, जिसकी रिपोर्ट (1999) 19 बीएलडी (एचसीडी) 307 में दी गई थी, जहाँ यह माना गया था कि "यौन उत्पीड़न के अपराधियों को केवल सजा देने से पीड़िता और उसके परिवार के सदस्यों को अधिक सांत्वना नहीं मिल सकती है। पर्याप्त मौद्रिक मुआवजा पीड़ितों और परिवार के सदस्यों को हुए नुकसान और अन्याय की भरपाई कर सकता है। यह स्वतंत्र रूप से दिया जाना चाहिए और इसका दंड संहिता में निहित जुर्माना लगाने के प्रावधान से कोई संबंध नहीं होना चाहिए। मुआवजे का एक स्थायी तरीका तैयार किया जाना चाहिए। सरकार टिप्पणियों के तहत मामलों पर विचार कर सकती है..."

5. पीड़ित विज्ञान का आधुनिक दृष्टिकोण यह मानता है कि अपराध पीड़ित को पर्याप्त मुआवजा, पुनर्वास और मरम्मत का अधिकार है। मानवीय दृष्टिकोण से, इस बात से असहमत होने की कोई गुंजाइश नहीं है कि अपराध पीड़ितों, विशेष रूप से बलात्कार पीड़ितों को 'क्षतिपूर्ति' या 'मुआवजा' जैसा कुछ मिलना चाहिए जो उनके निरंतर कष्ट और आघात को कम कर सके।

6. पहले, पीड़ित को मुआवजा दंड प्रक्रिया संहिता (संक्षेप में 'सीआरपीसी') की धारा 357 के तहत मान्यता प्राप्त थी, जहाँ यदि सजा में जुर्माना लगाना शामिल था, तो न्यायालय द्वारा निर्धारित जुर्माने की राशि में से न्यायालय पीड़ित को मुआवजा दे

सकता था। तत्पश्चात्, 154वें विधि आयोग की रिपोर्ट के आधार पर, 31.12.2009 को एक संशोधन द्वारा, सीआरपीसी में धारा 357ए जोड़ी गई, जिसमें अभियुक्त के बरी होने की स्थिति में भी मुआवजे का प्रावधान किया गया। सीआरपीसी की धारा 357ए के तहत, सभी राज्यों को केंद्र सरकार के साथ समन्वय करके राज्य के लिए एक पीड़ित प्रतिकर योजना तैयार करनी थी और प्रतिकर की राशि तय करने का विवेकाधिकार राज्य और जिला विधिक सेवा प्राधिकरणों पर छोड़ दिया गया था।

7. सीआरपीसी की धारा 357ए द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, राज्य सरकार ने उन पीड़ितों या उनके आश्रितों को प्रतिकर हेतु धनराशि उपलब्ध कराने हेतु एक योजना तैयार की, जिन्हें अपराध के परिणामस्वरूप हानि या चोट लगी है और जिन्हें पुनर्वास की आवश्यकता है। इस योजना को "राजस्थान पीड़ित प्रतिकर योजना, 2011" (संक्षेप में "2011 की योजना") के रूप में जाना जाता है। 2011 की योजना का नियम 5 प्रतिकर प्रदान करने की प्रक्रिया से संबंधित है और इस योजना के साथ निम्नलिखित अनुसूची संलग्न की गई है, जो क्षति या क्षति के विवरण और प्रतिकर की अधिकतम सीमा से संबंधित है। अनुसूची निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत की गई है:

अनुसूची
[नियम 5(8) देखें]

क्रम संख्या	चोट या हानि का विवरण	मुआवजे की अधिकतम सीमा
1	2	3
1.	जीवन की हानि	रु. 2,00,000/-
2.	किसी अंग या शरीर के किसी भाग की हानि जिसके परिणामस्वरूप 80% या उससे अधिक विकलांगता हो।	रु. 1,00,000/-
3.	किसी अंग या शरीर के किसी भाग की हानि जिसके परिणामस्वरूप 40% या 80% से कम	रु. 50,000/-

	विकलांगता हो	
4.	नाबालिग से बलात्कार	रु. 3,00,000/-
5.	बलात्कार	रु. 2,00,000/-
6.	पुनर्वास	रु. 1,00,000/-
7.	किसी अंग या शरीर के किसी भाग की हानि जिसके परिणामस्वरूप 40% विकलांगता हो।	रु. 25,000/-
8.	मानव तस्करी जैसे मामलों में महिलाओं और बच्चों को गंभीर मानसिक पीड़ा पहुँचाने वाली किसी भी चोट के लिए क्षतिपूर्ति।	रु. 25,000/-
9.	पीड़ित बच्चे को साधारण क्षति या चोट।	रु. 20,000/-
10.	सिर का स्थायी रूप से विकृत होना या तेज़ाब से क्षतिग्रस्त होना	रु. 2,00,000/-

8. योजना 2011 के अधिनियमन के पश्चात्, इसके कार्यान्वयन का दायित्व राजस्थान राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण (संक्षेप में 'आरएसएलएसए') और जिला विधिक सेवा प्राधिकरण (संक्षेप में 'डीएलएसए') पर आ गया है। योजना 2011 के कार्यान्वयन में एकरूपता बनाए रखने के लिए, आरएसएलएसए ने 25.07.2012 को सामान्य दिशानिर्देश जारी किए।

9. 2011 की योजना के अनुसार, बलात्कार की शिकार नाबालिग पीड़िता 3,00,000/- रुपये का मुआवज़ा पाने की हकदार है, जबकि याचिकाकर्ता की नाबालिग बेटी को मुख्यमंत्री राहत कोष से केवल 10,000/- रुपये की राशि मिली है। याचिकाकर्ता ने 19.09.2005 को जयपुर ज़िले के ज़िला कलेक्टर के समक्ष 3,00,000/- रुपये का मुआवज़ा देने के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया, लेकिन आज तक याचिकाकर्ता की नाबालिग बेटी को कोई राशि नहीं दी गई है। अतः, इन विवश परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता ने वर्तमान रिट याचिका दायर करके इस

न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस न्यायालय के असाधारण क्षेत्राधिकार का आह्वान किया है।

10. अब इस न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न उठता है कि "क्या याचिकाकर्ता की नाबालिग पुत्री दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 357 ए के अंतर्गत पीड़ित प्रतिकर योजना का लाभ पाने की हकदार है और क्या पीड़ित प्रतिकर योजना, 2011 के प्रावधान पूर्वव्यापी प्रभाव से या भावी प्रभाव से लागू होंगे?"

11. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 357 ए में संशोधन से पहले और विधि आयोग की 154 वीं रिपोर्ट तथा 2011 की योजना के अधिनियमन से पहले, भारत संघ ने "मलीमठ समिति" का गठन किया था, जिसकी अध्यक्षता कर्नाटक और केरल उच्च न्यायालयों के पूर्व मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति वी.एस.मलीमठ ने की थी। इस समिति को आपराधिक न्याय प्रणाली में विश्वास बहाल करने के लिए आपराधिक कानून के मूलभूत सिद्धांतों की जाँच करने का कार्य सौंपा गया था।

12. मलीमठ समिति ने पीड़ित के लिए मुआवजे के संबंध में सिफारिशें की हैं। अनुच्छेद 6.8.7 और 6.8.8 में, समिति ने निम्नलिखित सिफारिशें की हैं:

"6.8.7 आपराधिक न्याय प्रशासन के तहत पीड़ितों की दुर्दशा के प्रति सहानुभूति रखते हुए और मानव अधिकारों की रक्षा में भारतीय संविधान के तहत पूर्ण न्याय करने के दायित्व का लाभ उठाते हुए, भारत में सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों ने न केवल धन के संदर्भ में बल्कि अन्य उचित राहत और उपायों के संदर्भ में भी प्रतिपूरक उपाय देने की प्रथा विकसित की है। भागलपुर अंधेपन के पीड़ितों के लिए चिकित्सा न्याय, सांप्रदायिक हिंसा पीड़ितों को पुनर्वास न्याय और यूनियन कार्बाइड पीड़ितों को प्रतिपूरक न्याय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा गढ़े गए राहत और उपायों के इस उदार पैकेज के उदाहरण हैं। नीलाहटी बेहरा बनाम उड़ीसा राज्य [(1993) 2 एससीसी

746] और अध्यक्ष, रेलवे बोर्ड बनाम चंद्रिमा दास में हाल के फैसले अपराध के पीड़ितों को न्याय दिलाने के लिए संवैधानिक क्षेत्राधिकार का उपयोग करने की उनकी नई प्रवृत्ति के उदाहरण हैं।

6.8.8 इन निर्णयों ने हिंसक अपराधों के पीड़ितों को मुआवजा देने की आवश्यकता को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है, चाहे अपराधी पकड़े जाएँ या दंडित। इस सिद्धांत का उद्देश्य राज्य का दायित्व है कि वह मूल अधिकारों की रक्षा करे और अपराध के पीड़ितों को निष्पक्ष एवं शीघ्र न्याय प्रदान करे। अब समय आ गया है कि आपराधिक न्याय प्रणाली भारतीय संविधान के इन सिद्धांतों पर ध्यान दे और इस विषय पर उचित कानून बनाए।"

13. इसके बाद, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने (2000) 2 एससीसी 465 में रिपोर्ट किए गए चेयरमैन, रेलवे बोर्ड बनाम चंद्रिमा दास के मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा पारित फैसले को बरकरार रखा और हावड़ा रेलवे स्टेशन पर सामूहिक बलात्कार की शिकार हुई बांग्लादेशी विदेशी पर्यटक को 10,00,000/- रुपये का मुआवजा दिया।

14. इसलिए, यह स्पष्ट है कि पीड़ितों को मुआवजा देने की अवधारणा कोई नई अवधारणा नहीं थी और इसे न्यायालयों ने मान्यता दी थी और इसीलिए न्यायालयों ने अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए कई बलात्कार पीड़ितों को मुआवजा दिया है। यहां तक कि (1988) 4 एससीसी 551 में रिपोर्ट किए गए हरि सिंह बनाम सुखबीर सिंह एवं अन्य के मामले में भी, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने महसूस किया कि अपराध पीड़ितों को मुआवजे के सिद्धांतों की समीक्षा की जानी चाहिए और सभी मामलों को कवर करने के लिए उनका विस्तार किया जाना चाहिए। यह भी महसूस किया गया कि मुआवजा केवल जुर्माने या दंड तक सीमित नहीं होना चाहिए बल्कि राज्य को अपने कोष से अपराध के पीड़ितों को पर्याप्त मुआवजा राशि प्रदान करनी चाहिए, यहां तक कि अभियुक्तों के बरी होने के मामलों में या जहां अपराधी

का पता नहीं चल पा रहा हो या उसकी पहचान नहीं हो पा रही हो। इसी पृष्ठभूमि में, भारतीय विधि आयोग द्वारा प्रस्तुत 154वीं रिपोर्ट के आधार के रूप में सीआरपीसी की धारा 357ए के संशोधित प्रावधान सामने आए।

15. इसके बाद, वर्ष 2009 में सीआरपीसी में धारा 357ए को शामिल करके पीड़ित मुआवजा योजना प्रदान करने का नया प्रावधान सामने लाया गया लेकिन इस संशोधित प्रावधान में कहीं भी यह उल्लेख नहीं है कि इस धारा के लाभ भावी या पूर्वव्यापी प्रकृति के हैं।

16. इसमें कोई दो राय नहीं है कि प्रक्रियात्मक लाभकारी कानून आम तौर पर पूर्वव्यापी प्रकृति के होते हैं और जो कानून मूलभूत हैं वे अपने आवेदन में भावी होते हैं, जब तक कि उनके तहत कोई स्पष्ट प्रावधान न किया गया हो। इसी तरह की स्थिति से निपटते हुए, केरल उच्च न्यायालय ने जिला कलेक्टर बनाम जिला विधिक सेवा प्राधिकरण एवं अन्य के मामले में, जिसकी रिपोर्ट 2020 एससीसी ऑनलाइन केर 8292 में दी गई है, पैरा 24 से 34 में निम्नानुसार माना है:

“24. धारा 357ए सीआरपीसी, दंड प्रक्रिया संहिता संशोधन अधिनियम, 2008 (2009 का अधिनियम 5) के माध्यम से 31.12.2009 से प्रभावी हुई थी। संशोधित प्रावधानों में कहीं भी यह उल्लेख नहीं है कि संशोधन भावी या यहां तक कि पूर्वव्यापी प्रकृति का है।

25. इसमें कोई विवाद नहीं है कि प्रक्रियात्मक कानून आम तौर पर पूर्वव्यापी संचालन में होते हैं, जबकि जो कानून मूल हैं वे अपने आवेदन में भावी होते हैं जब तक कि स्पष्ट शर्त या आवश्यक इरादे से, प्रावधान अन्यथा प्रदान न करें। यह पता लगाने के प्रयास में कि क्या धारा 357ए(4) सीआरपीसी 31.12.2009 से पहले हुए अपराधों पर लागू होती है, यह पहचानना आवश्यक है कि प्रावधान मूल है या प्रक्रियात्मक।

26. मूल कानून, कानून का वह हिस्सा है, जो पक्षों के अधिकारों, कर्तव्यों और शक्तियों का निर्माण, परिभाषा और विनियमन करता है, जबकि प्रक्रियात्मक कानून, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, यह कानून के उस भाग से संबंधित है, जो अधिकारों और कर्तव्यों को लागू करने और निवारण प्राप्त करने के लिए प्रक्रियाओं और विधियों का निर्धारण करता है। सरल शब्दों में, जब मूल कानून अधिकारों का सृजन, परिभाषा या विनियमन करता है, तो प्रक्रियात्मक कानून इस प्रकार सृजित अधिकारों के प्रवर्तन या निवारण की विधि का निर्माण करता है। सैल्मंड की प्रसिद्ध कृति 'न्यायशास्त्र' (12 वां संस्करण, दक्षिण एशियाई संस्करण, 2016) में, इसे इस प्रकार कहा गया है: 'प्रक्रिया के कानून को कानून की उस शाखा के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो मुकदमेबाजी की प्रक्रिया को नियंत्रित करती है। यह क्रियाओं का कानून है - क्रिया शब्द का व्यापक अर्थ में प्रयोग करते हुए, इसमें सभी कानूनी कार्यवाहियाँ, चाहे वे दीवानी हों या आपराधिक, शामिल हैं। शेष सभी मूल कानून हैं, और मुकदमेबाजी की प्रक्रिया से नहीं, बल्कि उसके उद्देश्यों और विषय-वस्तु से संबंधित हैं। मूल कानून उन उद्देश्यों से संबंधित है जिनकी न्याय प्रशासन तलाश करता है; प्रक्रियात्मक कानून उन साधनों और उपकरणों से संबंधित है जिनके द्वारा उन उद्देश्यों को प्राप्त किया जाना है। ये साधन मुकदमेबाजी के संबंध में न्यायालयों और वादियों के आचरण और संबंधों को विनियमित करते हैं; पूर्व मुकदमेबाजी के मामलों के संबंध में आचरण और संबंधों को निर्धारित करता है।" रामनाथ अय्यर के एडवांस्ड लॉ लेक्सिकन चौथा संस्करण (2013) में, मूल कानून को कानून का वह हिस्सा बताया गया है जो पक्षों के अधिकारों, कर्तव्यों और शक्तियों का निर्माण, परिभाषित और विनियमन करता है। सर्वोच्च न्यायालय ने मूल कानून पर उपरोक्त प्रस्तावों को मंजूरी दे दी है, जैसा कि कार्यकारी अभियंता, ढ़कनाल लघु सिंचाई प्रभाग, उड़ीसा और अन्य बनाम एनसी बंधाराज [(2001) 2 एससीसी 721] के फैसले से देखा जा सकता है, जिसमें यह माना गया था कि "मूल कानून कानून का वह हिस्सा है, जो अधिकारों को लागू करने का एक तरीका प्रदान करने वाले विशेषण या उपचारात्मक कानून

के विपरीत अधिकारों का निर्माण, परिभाषित और विनियमन करता है"।

27. सीआरपीसी की धारा 357 ए(1)(4) और (5) को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाएगा कि उक्त उप-खंड पीड़ित को प्राप्त करने का अधिकार बनाते हैं इसमें निर्धारित शर्तों को पूरा करने पर मुआवज़ा देने का प्रावधान है। पहले, धारा 357 ए(4) सीआरपीसी जैसा कोई वैधानिक प्रावधान नहीं था। पीड़ित के पास राज्य के विरुद्ध मुआवज़ा मांगने का न तो कोई उपाय उपलब्ध था और न ही राज्य पर पीड़ित को मुआवज़ा देने का कोई दायित्व था, खासकर जब अभियुक्त की पहचान या पता नहीं लगाया गया हो और मुकदमा भी न चला हो। यह न्यायालय उन अवसरों के प्रति सचेत है जब उच्च न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालय ने पीड़ितों को मुआवज़ा देने का आदेश दिया है। जैसा कि विद्वान सरकारी वकील, एडवोकेट विनोद ने ठीक ही बताया है, ये सभी ऐसे मामले थे जिनमें तथ्यों के आधार पर मुआवज़ा देना उचित था क्योंकि अपराध या तो राज्य की कार्रवाई या निष्क्रियता के कारण हुए थे। इस प्रकार, धारा 357 ए(1) (4) और (5) सीआरपीसी ने उन मामलों में पीड़ित को एक अधिकार प्रदान किया है जहाँ अपराधी का पता नहीं लगाया जा सका है या उसकी पहचान नहीं हो पाई है और मुकदमा भी नहीं चला है, पीड़ित के पुनर्वास के लिए राज्य सरकार से मुआवज़ा प्राप्त करने का। इसने पीड़ित के अधिकारों का निर्माण और परिभाषा की है, और मुआवज़ा देने का कर्तव्य राज्य सरकार पर है। इस प्रकार धारा 357 ए(1)(4) और (5) सीआरपीसी एक मूल कानून है न कि प्रक्रियात्मक कानून।

28. एक मूल कानून के रूप में, उपरोक्त वैधानिक प्रावधान का केवल भावी अनुप्रयोग होगा। हालाँकि, धारा 357 ए(1)(4) और (5) सीआरपीसी के मामले में एक अंतर है। पीड़ित का पुनर्वास धारा 357 ए(4) सीआरपीसी का दायरा, तात्पर्य और आयात है, जब इसे धारा 357 ए(1) सीआरपीसी के साथ पढ़ा जाता है। यह भारत के विधि आयोग की 154 वीं रिपोर्ट की सिफारिश की पृष्ठभूमि में समझने पर

अधिक स्पष्ट है। पीड़ित का पुनर्वास एक उपचारात्मक उपाय था। इसने अपराध पीड़ितों, विशेषकर उन पीड़ितों को, जिनके अपराधियों का पता नहीं चल पाया था, मुआवजा देने के तत्कालीन मौजूदा प्रावधानों की कमजोरी को दूर किया। यह प्रावधान उपचारात्मक। उपचारात्मक कानूनों या प्रावधानों को कल्याणकारी, लाभकारी या सामाजिक न्यायोन्मुखी कानून के रूप में भी जाना जाता है।

29. उपचारात्मक उपाय के रूप में लाए गए प्रावधान की व्याख्या करते समय, वह भी उन अपराधों के पीड़ितों के कल्याण के साधन के रूप में, जिनमें अपराधियों या अपराधियों की पहचान नहीं की गई है और जिनमें मुकदमा नहीं हुआ है, न्यायालय को हमेशा सावधान और सतर्क रहना चाहिए कि विधायिका द्वारा अपेक्षित कल्याण को विफल न किया जाए। उपचारात्मक प्रावधानों में, साथ ही कल्याणकारी कानून में, कानून के शब्दों की व्याख्या इस तरह से की जानी चाहिए कि यह वाक्यांशविज्ञान द्वारा अनुमत सबसे पूर्ण उपचार प्रदान करे। न्यायालय को, ऐसी परिस्थितियों में, हमेशा शब्दों की व्याख्या इस तरह से करनी चाहिए, कि प्रावधान द्वारा परिकल्पित राहत सुनिश्चित हो और लाभान्वित होने वाले वर्ग को इससे वंचित न किया जाए।

30. धारा 357 ए(4) सीआरपीसी की व्याख्या करते समय, यह न्यायालय पीड़ित के पीड़ा से ग्रस्त चेहरे और ऐसे पीड़ितों द्वारा झेले गए आघात और कष्टों से अनभिज्ञ नहीं हो सकता, खासकर जब उनके अपराधियों की पहचान या पता भी नहीं लगाया गया हो या उन पर मुकदमा भी नहीं चलाया गया हो। निर्णय के लिए उठाए गए प्रश्न पर विचार करते समय पीड़ितों का पीड़ादायक चेहरा इस न्यायालय के सामने मंडरा रहा है।

31. धारा 357 ए(1)(4) और (5) सीआरपीसी पर उपर्युक्त सिद्धांतों के मंडराते हुए, प्रावधान की व्याख्या इस तरह से की जानी चाहिए कि यह पीड़ितों को लाभान्वित करे। यदि उक्त लाभ कानून के सिद्धांतों का उल्लंघन किए बिना प्रदान किया जा सकता है, तो अदालतों को उस दृष्टिकोण को अपनाना चाहिए। एक मूलभूत कानून जो उपचारात्मक है,

कानून को भविष्य में लागू करने के लिए एक पिछली घटना पर विचार कर सकता है। ऐसा दृष्टिकोण मूलभूत कानून को उसके संचालन में पूर्वव्यापी नहीं बनाता है। दूसरी ओर, यह केवल विधायिका की मंशा को पूरा करता है।

32. दूसरे शब्दों में, जब धारा 357 ए(4) सीआरपीसी के लागू होने से पहले हुए अपराध के पीड़ित द्वारा आवेदन किया जाता है, तो पूर्ववर्ती तथ्य को ध्यान में रखते हुए एक भावी लाभ दिया जाता है। ऐसी व्याख्या अपनाने से कानून या प्रावधान पूर्वव्यापी प्रभाव से लागू नहीं हो जाते। यह केवल कुछ मामलों में, पूर्ववर्ती तथ्यों को भी भावी लाभ प्रदान करता है। कानून लागू होने पर भावी बना रहेगा, लेकिन किसी पूर्व घटना को भी जीवन प्रदान करेगा। मूल कानून की पूर्वव्यापी प्रभाव से संबंधित नियम का उल्लंघन या प्रभाव केवल इसलिए नहीं होता कि प्रावधान के तहत कार्रवाई के लिए आवश्यक शर्तों का एक हिस्सा उसके पारित होने से पहले के समय से लिया गया है। केवल इसलिए कि किसी उपचारात्मक वैधानिक प्रावधान के तहत भावी लाभ पूर्ववर्ती तथ्यों द्वारा मापा जाता है या उन पर निर्भर करता है, यह आवश्यक रूप से प्रावधान को पूर्वव्यापी प्रभाव से लागू नहीं करता।

33. उपरोक्त दृष्टिकोण द क्वीन बनाम द इनहेबिटेंट्स ऑफ सेंट मैरी, व्हाइटचैपल (1848 12 क्यूबी 120) के निर्णय की धारा 127 से पुष्ट होता है, जहाँ लॉर्ड डेनमैन सीजे ने कहा था कि 'किसी कानून को पूर्वव्यापी कानून नहीं कहा जा सकता क्योंकि उसकी कार्रवाई के लिए आवश्यक शर्तों का एक हिस्सा उसके पारित होने से पहले के समय से लिया गया है'। मास्टर लेडीज़ टेलर्स ऑर्गनाइजेशन बनाम मिनिस्टर ऑफ़ लेबर एंड नेशनल सर्विस (1950 (2) ऑल ईआर 525) के निर्णय में की गई टिप्पणियाँ भी प्रासंगिक हैं। पृष्ठ 527 पर यह माना गया था कि "यह तथ्य कि कुछ मामलों में किसी संभावित लाभ को पूर्वव्यापी तथ्यों द्वारा मापा जाता है या उन पर निर्भर करता है, आवश्यक रूप से उस प्रावधान को पूर्वव्यापी नहीं बनाता है।" उपर्युक्त दो अंग्रेजी निर्णयों पर सर्वोच्च न्यायालय ने श्री बैंक लिमिटेड (परिसमापन में) बनाम

सरकार दत्त रॉय एंड कंपनी (एआईआर 1966 एससी 1953) में भरोसा किया था, जब वह बैंकिंग कंपनी अधिनियम, 1949 की धारा 450 के पूर्वव्यापी आवेदन पर विचार कर रहा था (जिसे 30-12-1953 के संशोधन द्वारा लाया गया था, जिसके अनुसार समापन याचिका प्रस्तुत करने और उसका अनुसरण करने में व्यतीत अवधि को समयबद्ध ऋण को पुनर्जीवित करने की सीमा अवधि निर्धारित करने के लिए बाहर रखा जा सकता है)।

33. पियाली दत्ता बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य (2017 सी आर एलजे 4041) के फैसले में, कलकत्ता उच्च न्यायालय ने माना कि धारा 357 ए समय तटस्थ है, अर्थात्, यह कानून में धारा के शामिल होने से पहले हुए अपराध के पीड़ितों और कानून की किताब में धारा के शामिल होने के बाद हुई अपराध की घटनाओं के बीच अंतर नहीं करती है। यह भी माना गया कि यह धारा अपराध के घटित होने के समय के आधार पर पीड़ितों के बीच कोई भेद नहीं करती है और समय के आधार पर पृथक्करण अस्वीकार्य है तथा यह भारत के संविधान के तहत राज्य द्वारा प्रदत्त समानता और समान व्यवहार के अधिकार के विरुद्ध होगा।"

और अंत में, पैराग्राफ 37 में यह माना गया कि सीआरपीसी की धारा 357 ए के तहत पीड़ित, उक्त प्रावधान के लागू होने से पहले हुई घटनाओं के लिए भी मुआवजा पाने के हकदार हैं। फैसले का पैराग्राफ 37 इस प्रकार है:

"37. उपरोक्त विचार-विमर्श के मद्देनजर, निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जाते हैं:

(i) धारा 357 ए(1)(4) और (5) सीआरपीसी के प्रावधान मूल प्रकृति के हैं।

(ii) सीआरपीसी की धारा 357 ए(4) के तहत पीड़ित, उक्त प्रावधान के लागू होने से पहले हुई घटनाओं के लिए भी मुआवजे का दावा करने के हकदार हैं।

(iii) 31.12.2009 से पहले हुए अपराधों के लिए, धारा 357 ए(4) सीआरपीसी के तहत पीड़ितों को लाभ देकर, वैधानिक प्रावधान को पूर्वव्यापी प्रभाव नहीं दिया जाता है, बल्कि पूर्ववर्ती तथ्य के आधार पर एक भावी लाभ दिया जाता है।”

17. इसी तरह की स्थिति से निपटते हुए, कलकत्ता उच्च न्यायालय ने अचिया बीबी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य के मामले में, जो 2019 एससीसी ऑनलाइन कैल 1950 में रिपोर्ट किया गया था, पैराग्राफ 19 से 24 में निम्नानुसार माना है:

19. धारा 357 ए पीड़ित को मुआवजा देने और पुनर्वास करने के लिए कानून में शामिल की गई है। यह आपराधिक कार्यवाही के परिणाम के बावजूद पीड़ित के मुआवजा और पुनर्वास प्राप्त करने के अधिकार को मान्यता देती है। पुनर्वास और मुआवजा प्राप्त करने का अधिकार धारा 357 ए(2) के तहत न्यायालय द्वारा की गई सिफारिश या धारा 357 ए(3) के तहत मुकदमे के समापन पर आदेश पर निर्भर नहीं है या उसकी प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। पीड़ित को इस आधार पर पुनर्वास और मुआवजे से इनकार नहीं किया जा सकता कि आपराधिक कार्यवाही अभी अंतिम रूप नहीं पकड़ी है या कार्यवाही पर रोक लगाने वाले न्यायालय ने अभी कोई सिफारिश नहीं की है।

20. पश्चिम बंगाल पीड़ित मुआवजा योजना, 2017 17 फरवरी, 2017 से प्रभावी हो गई है। इसे राज्य सरकार ने केंद्र सरकार के समन्वय से, 1973 की संहिता की धारा 357 ए द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए प्रख्यापित किया है। पीड़ित को योजना के खंड 2(i) में परिभाषित किया गया है। 2017 में एक ऐसे व्यक्ति के रूप में जिसे अपराध के परिणामस्वरूप हानि या चोट पहुंची है और उसे पुनर्वास की आवश्यकता है। 2017 की योजना के खंड 4 में मुआवजे की पात्रता निर्धारित की गई है। यह एक पीड़ित को मुआवजा देने पर विचार करता है, जहां अपराधी का पता नहीं लगाया जाता है या उसकी पहचान नहीं की जाती

है लेकिन पीड़ित की पहचान हो जाती है और जहां कोई मुकदमा नहीं चलता है। 2017 की योजना के तहत पीड़ित की परिभाषा में आने वाला और 2017 की योजना के खंड 4 के अनुसार मुआवजे के लिए पात्र व्यक्ति को मुआवजे से इनकार नहीं किया जा सकता है। 2017 की योजना का खंड 4 अनिवार्य रूप से दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 357 ए(4) के तहत एक परिदृश्य है। 2017 की योजना के खंड 4 का यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता है कि, 2017 की योजना के तहत मुआवजे के अनुदान के लिए आवेदन पर विचार करने वाले प्राधिकारी को आपराधिक कार्यवाही के संबंध में न्यायालय के निर्णय की प्रतीक्षा करनी चाहिए। 2017 की योजना के तहत मुआवजा देने में आपराधिक कार्यवाही के सीज़िन को शामिल किया गया है। यह केवल इस आधार पर मुआवजे के लिए आवेदन पर विचार करने से इनकार नहीं कर सकता है कि, आपराधिक कार्यवाही के सीज़िन में न्यायालय को अभी यह तय करना है कि आवेदक मुआवजे का हकदार है या नहीं या उस न्यायालय ने मुआवजा देने का निर्देश देने वाला कोई आदेश पारित नहीं किया है। 2017 की योजना का संचालन, आह्वान और कार्यान्वयन न्यायालय के किसी आदेश पर निर्भर नहीं है। 2017 की योजना ऐसी है कि यह न्यायालय के किसी भी आदेश की अनुपस्थिति के बावजूद संचालित होती है। न्यायालय के निर्णय या न्यायालय के निर्देश के लंबित रहने तक 2017 की योजना के लाभों को न तो रोका जा सकता है और न ही इसकी प्रयोज्यता या संचालन को निलंबित किया जा सकता है। 2017 की योजना एक पीड़ित के लाभ के लिए है और इसे अपेक्षित तत्परता के साथ लागू किया जाना चाहिए।

21. ब्रजनंदन सिन्हा (सुप्रा) ने न्यायालय की अवमानना अधिनियम, 1952 के अर्थ में "न्यायालय का गठन क्या है" पर विचार किया है। (जांच) अधिनियम, 1850, 1952 के अधिनियम के अर्थ में न्यायालय नहीं है। अंकुश शिवाजी गायकवाड़ (सुप्रा) ने 1973 की संहिता की धारा 357 पर विचार किया है। इसने माना है कि किसी विशेष मामले में मुआवजे का पुरस्कार देना या इनकार करना न्यायालय के विवेकाधिकार में हो सकता है। हालांकि, प्रत्येक आपराधिक मामले में

मुआवजे के पुरस्कार के प्रश्न पर विचार करना न्यायालय का अनिवार्य कर्तव्य है। न्यायालय को अभियुक्त की भुगतान करने की क्षमता को ध्यान में रखना होगा। इसने देखा है कि, मुआवजा देने की शक्ति का उद्देश्य पीड़ित को आश्वस्त करना था कि आपराधिक न्याय प्रणाली में पीड़ित को भुलाया नहीं गया है।

22. पियाली दत्ता (सुप्रा) ने पश्चिम बंगाल पीड़ित प्रतिकर योजना, 2017 पर इस संदर्भ में विचार किया है कि क्या यह योजना पूर्वव्यापी प्रकृति की थी या नहीं। इसने यह माना है कि, योजना के लागू होने से पहले घटित अपराध की घटनाओं में, यदि पीड़ित अन्यथा प्रतिकर का हकदार है, तो उसे प्रतिकर से वंचित नहीं किया जा सकता।

23. पियाली दत्ता (सुप्रा) के मामले में सेरीना मंडल उर्फ पियादा (सुप्रा) मामले में विचार किया गया। सेरीना मंडल उर्फ पियादा (सुप्रा) मामले में डीएलएसए के एक समान निर्णय पर विचार किया गया है, जिसके तहत डीएलएसए ने पीड़िता के दावे को खारिज कर दिया था। न्यायालय को सूचित किया जाता है कि इस मामले में रिट याचिकाकर्ता की स्थिति और परिस्थितियाँ सेरीना मंडल उर्फ पियादा (सुप्रा) मामले में रिट याचिकाकर्ता के समान ही हैं। न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय दिया है:—

"2017 की योजना का उद्देश्य और प्रयोजन, जिसने स्वयं वर्ष 2012 की एक पूर्ववर्ती योजना का स्थान लिया है, अन्य बातों के साथ-साथ यह है कि किसी गंभीर अपराध की पीड़िता, विशेषकर महिला को तत्काल ध्यान देने और शारीरिक एवं मानसिक पुनर्वास की आवश्यकता है। योजना और धारा 357ए की प्रकृति से ऐसा पुनर्वास इस बात पर निर्भर नहीं है कि जांच किस गति से की जाती है या मुकदमा किस गति से चलाया जाता है। यदि योजना और धारा 357ए का उद्देश्य और प्रयोजन यही है, तो मैं आक्षेपित आदेश में राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण के निष्कर्षों का समर्थन नहीं कर सकता कि दोनों आवश्यकताएं, अर्थात्

अभियुक्त का पता न लगाया जाना या उसकी पहचान न किया जाना और मुकदमा शुरू न होने का तथ्य, पूरी होनी चाहिए।

धारा 357ए (सुप्रा) के अनुसार तैयार की गई योजना के तहत मुआवजा दिया जाता है क्योंकि अनुच्छेद 21 के तहत पीड़ित के मौलिक अधिकारों का वास्तव में उल्लंघन हुआ है। ऐसे पीड़ित को मुआवजा देने से इनकार करना इस तरह के उल्लंघन को जारी रखेगा और संबंधित पीड़ित पर घोर अमानवीयता करेगा। यह धारा 357ए और ऊपर उल्लिखित 2017 योजना का उद्देश्य नहीं हो सकता है। इसलिए मेरा मानना है कि आरोपी की पहचान न होने या उसका पता न चलने और मुकदमा शुरू न होने, दोनों ही आवश्यकताएं 2017 योजना के तहत मुआवजे के हकदार होने के लिए पूरी नहीं होनी चाहिए।

इस मुद्दे को हल करने का एक और तरीका है। अगर आरोपी की पहचान नहीं हुई है तो मुकदमा वैसे भी शुरू नहीं हो सकता। विधायिका एक ही परिणाम की ओर ले जाने वाली घटना को दो बार एक पूर्व शर्त के रूप में लागू नहीं कर सकती थी। कोई भी एकाधिक पूर्व शर्तें स्वतंत्र घटनाएं होनी चाहिए। दो समान घटनाएं दो अलग-अलग शर्तें नहीं बना सकती।"

24. अतः वर्तमान मामले के तथ्यों को देखते हुए, एसएलएसए और डीएलएसए का आक्षेपित निर्णय बरकरार नहीं रखा जा सकता। एसएलएसए को निर्देश दिया जाता है कि वह याचिकाकर्ता को 2017 की योजना के अंतर्गत तत्काल मुआवजा वितरित करे।"

18. जिला कलेक्टर बनाम डीएलएसए (सुप्रा) के मामले में केरल उच्च न्यायालय के फैसले के बाद, कर्नाटक उच्च न्यायालय ने वाकलपुडी वेंकन्ना बनाम कर्नाटक

राज्य और अन्य के मामले में एमएएनयू/केए/2277/2022 में रिपोर्ट किया कि सीआरपीसी की धारा 357 ए के साथ-साथ कर्नाटक पीड़ित मुआवजा योजना, 2011 के तहत निहित प्रावधान उक्त प्रावधान/योजना के लागू होने से पहले हुई घटनाओं पर लागू होते हैं और इसे पैराग्राफ 10 में निम्नानुसार माना गया है:

"10. जैसा कि इस न्यायालय और अन्य उच्च न्यायालयों के उपरोक्त निर्णयों से देखा जा सकता है, धारा 357-ए सीआरपीसी के साथ-साथ कर्नाटक पीड़ित मुआवजा योजना, 2011 उक्त प्रावधान / उक्त योजना के लागू होने से पहले हुई घटनाओं पर भी लागू होती है। वर्तमान मामले में, इस तथ्य के अलावा कि धारा 357-ए सीआरपीसी, और योजना याचिकाकर्ता को उसके बेटे नरसिम्हलु की मृत्यु के संबंध में मुआवजा देने के उद्देश्य से लागू है, जो 08.10.2009 को समाप्त हो गई, निर्विवाद तथ्य कि वीसीसी, रायचूर ने धारा 357-ए सीआरपीसी के साथ-साथ योजना दोनों के लागू होने के बाद 22.07.2015 को एक आदेश पारित किया, यह इंगित करने के लिए पर्याप्त है कि याचिकाकर्ता और उसके परिवार के सदस्य धारा 357-ए सीआरपीसी और योजना के तहत मुआवजे के हकदार हैं पीड़ित मुआवजा समिति। इन परिस्थितियों में, मेरी यह सुविचारित राय है कि प्रतिवादी संख्या 2 ने याचिकाकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों के पक्ष में मुआवजा देने से इनकार करते हुए दिनांक 12.08.2015 को आक्षेपित समर्थन/संचार जारी करने में स्पष्ट रूप से गलती की है और परिणामस्वरूप, इसे रद्द किया जाना चाहिए और प्रतिवादी संख्या 2 को पीड़ित मुआवजा समिति, रायचूर द्वारा वीसीपी संख्या 12/2015 में पारित दिनांक 22.07.2015 के आदेश के अनुसार याचिकाकर्ता के पक्ष में मुआवजा देने का निर्देश दिया जाना चाहिए।"

19. जिला कलेक्टर बनाम डीएलएसए (सुप्रा) मामले में केरल उच्च न्यायालय, अचिया बीबी (सुप्रा) मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय और वकलपुडी वेंकन्ना

(सुप्रा) मामले में कर्नाटक उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णयों के अनुसरण में, इस न्यायालय को अलग दृष्टिकोण अपनाने का कोई वैध कारण नहीं मिलता है।

20. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मोहम्मद हारून एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य [रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 155/2013] के मामले में यह माना है कि कोई भी मुआवजा पर्याप्त नहीं हो सकता है, लेकिन चूंकि राज्य मौलिक अधिकारों के ऐसे गंभीर उल्लंघन की रक्षा करने में विफल रहा है, इसलिए राज्य का कर्तव्य है कि वह मुआवजा प्रदान करे, जिससे पीड़ित के पुनर्वास में मदद मिल सके। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी कहा कि "राज्य का दायित्व मुआवजे के भुगतान पर समाप्त नहीं होता है, पीड़ित का पुनर्वास भी सर्वोपरि है। ऐसे जघन्य अपराध के कारण पीड़ित को जो मानसिक आघात पहुँचता है, उसके लिए पुनर्वास प्रत्येक मामले में अनिवार्य हो जाता है।"

21. इसलिए, यह मानना सुरक्षित होगा कि सीआरपीसी की धारा 357 ए के साथ-साथ राजस्थान पीड़ित प्रतिकर योजना, 2011 के तहत निहित संशोधित प्रावधान उक्त प्रावधान और योजना, 2011 के अधिनियमन से पहले हुई घटनाओं पर लागू होते हैं और याचिकाकर्ता की नाबालिग बेटी जैसी पीड़िता योजना 2011 के अनुसार प्रतिकर पाने की हकदार है।

22. नाबालिग पीड़िता के साथ किया गया बलात्कार का अपराध अमानवीय और मानवीय गरिमा का अपमान है। इसलिए, पीड़िता को सांत्वना के रूप में मुआवजा दिया जाना चाहिए।

23. उपर्युक्त चर्चाओं के मद्देनजर, इस रिट याचिका को आंशिक रूप से स्वीकार किया जाता है और प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता की पीड़ित बेटी को उसके द्वारा पहले प्राप्त मुआवजे की राशि को समायोजित करने के बाद 3,00,000/- रुपये का मुआवजा दें।

24. प्रतिवादियों और राजस्थान राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण (आरएसएलएसए) के साथ-साथ जिला विधिक सेवा प्राधिकरण (डीएलएसए), जयपुर को निर्देश दिया जाता है कि वे इस आदेश की प्राप्ति की तिथि से तीन महीने की अवधि के भीतर 2011 की योजना के तहत निहित प्रावधानों और आरएसएलएसए द्वारा जारी दिशानिर्देशों के अनुसार इस आदेश का अनुपालन करें।

25. बलात्कार की नाबालिग पीड़िताएं 5,000/- रुपये का मुआवजा पाने की हकदार हैं। 3,00,000/- के मुआवजे के लिए आवेदन कर सकते हैं जिनके साथ घटना वर्ष 2009 से पहले घटित हुई है, बशर्ते उन्होंने इस संबंध में वर्ष 2009 से पहले दावा प्रस्तुत किया हो। बलात्कार की सभी नाबालिग पीड़ितों, जिनके साथ वर्ष 2009 से पहले बलात्कार की घटना घटी थी, के पक्ष में मुआवजा देने के लिए एक सामान्य परमादेश जारी किया जाता है। यह सामान्य परमादेश केवल उन्हीं मामलों में लागू होगा जहाँ आवेदन Cr.P.C की धारा 357A में संशोधन से पहले प्रस्तुत किए गए थे। राजस्थान सरकार के मुख्य सचिव और RSLSA के सदस्य सचिव को निर्देश दिया जाता है कि वे इस मामले की जाँच करें और बलात्कार की ऐसी नाबालिग पीड़ितों को बिना किसी और देरी के मुआवजे की राशि वितरित करने के लिए जल्द से जल्द आवश्यक कार्रवाई करें।

26. इस आदेश को जारी करने से पहले, यह स्पष्ट किया जाता है कि यह आदेश किसी भी आवेदक को कार्रवाई का कोई नया कारण नहीं प्रदान करेगा और यह केवल उन मामलों पर लागू होगा जो या तो सक्षम प्राधिकारी के समक्ष लंबित हैं और/या उन मामलों पर जहाँ पीड़ित मुआवजे के दावे के संबंध में मुकदमा इस आदेश की तिथि पर लंबित है।

27. कार्यालय/रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि इस आदेश की एक प्रति प्रतिवादीगण, राजस्थान सरकार के मुख्य सचिव, सदस्य सचिव आर.एस.एल.एस.ए और सचिव डी.एल.एस.ए, जयपुर को आवश्यक कार्रवाई और आदेश के अनुपालन के लिए भेजें।

28. सभी आवेदन (यदि कोई लंबित हों) निस्तारित माने जाते हैं। पक्षकारों को अपना खर्च स्वयं वहन करने की छूट है।

29. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि पीड़िता और उसके माता-पिता की पहचान उजागर नहीं की जानी चाहिए, याचिकाकर्ता और उसके पिता का नाम अक्षरों में लिखा जाता है। कार्यालय को निर्देश दिया जाता है कि इस याचिका का वाद शीर्षक, इस आदेश की प्रति सहित, मुकदमे के संबंधित पक्षों को जारी किया जाए।

(अनूप कुमार ढांड), न्यायमूर्ति

सोलंकी डी.एस., पी.एस.

अस्वीकरण: इस निर्णय का अनुवाद स्थानीय भाषा में किया जा रहा है, एवं इसका प्रयोग केवल पक्षकार इसको समझने के लिए उनकी भाषा में कर सकेंगे एवं यह किसी अन्य प्रयोजन में काम नहीं ली जायेगी। सभी आधिकारिक एवं व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए उक्त निर्णय का अंग्रेज़ी संस्करण ही विश्वसनीय माना जायेगा एवं निशपादन एवं क्रियान्वयन में भी उसी को उपयोग में लिया जायेगा।



अधिवक्ता अविनाश चौधरी